सत्कार्यवाद—सांख्यदर्शन का सर्वाधिक सुप्रसिद्ध एवं प्रमुख सिद्धान्त 'सत्कार्य-वाद' है। सत्कार्यवाद की मान्यता है कि उत्पत्ति के पूर्व भी कोई कार्य अपने कारण में उपस्थित रहता है। कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व भी सत् है। इसी मान्यता के कारण इस मत का नाम 'सत्कार्यवाद' कहा जाता है। सांख्यदर्शन के अनुसार कार्य पहले से कारण में विद्यमान रहता ही है। कार्य कारण में बीजरूप से अन्तर्निहित रहता है तथा कारण कार्य में स्वभावरूप से विद्यमान रहता है। सांख्य की दृष्टि में कार्य कोई नई सृष्टि नहीं है। इनके मत में उत्पत्ति और विनष्टि का अर्थ ही कुछ भिन्न है। उत्पत्ति का अर्थ है—अभिव्यक्ति अर्थात् कार्य की व्यक्त रूप में प्रतीति और विनाश का अर्थ क्षय या लोप न होकर उसका अर्थ है—व्यक्त कार्य का पुनः अपने कारण में विलीन हो जाना। उत्पत्ति या सर्ग आविर्भाव है और विनाश या प्रलय तिरोभाव। 'सत्कार्यवाद' के अनुसार कारण का ही परिवर्त्तित रूप कार्य है। कार्य और कारण स्तरीय एक ही वस्तु के दो रूप हैं; क्योंकि कारणावस्था का अव्यक्त रूप ही कार्यावस्था का व्यक्त रूप है।

सांख्य दर्शन ने कारण को पारिभषित करते हुए लिखा है—अव्यक्त रूप से कार्य कारण में ही व्याप्त रहता है। इस कथ्य के समर्थन में अनेक युक्तियाँ दी गई हैं (सांख्यकारिका-9)। जो स्वयं अभावस्वरूप है, वह किसी भी क्रिया का विषय नहीं बन सकता; जैसे—गगन-कुसुम। जो स्वयं असत् है, उसे 'सत्' नहीं बनाया जा सकता। जैसे—नीले को हजारों कलाकार मिलकर भी पीले नहीं बना सकते (**नहि नीलं शिल्पि-सहस्रेणाऽपि पीतं कर्तुं शक्यते—तत्त्वकौमुदी**)। (2) कोई भी उत्पन्न पदार्थ अपने उत्पादक सामग्री से अभिन्न है। (3) प्राक्प्रादुर्भाव कोई पदार्थ या कार्य किन्हीं सामग्री या कारणरूप में ही विद्यमान रहता है। इस तथ्य को स्वीकार यदि न किया जाय तो अनवस्था दोष होगा। अर्थात् हर किसी वस्तु से हरेक वस्तु के होने की सम्भावना बनेगी। कार्य-कारणभावसम्बन्धी योग्यता उसी से सम्बद्ध क्षमता वाली वस्तु से संवर्द्धित होती है। कार्य का स्वरूप कारण के स्वरूप से भिन्न नहीं होता। अपने तात्त्विक रूप में कपड़े धागे से भिन्न नहीं हैं; घड़े मिट्टी से अलग नहीं हैं। ऐसी स्थिति में ऐसे पदार्थों में जो तत्त्विक रूप में एक-दूसरे से भिन्न हैं, कार्य-कारणसम्बन्ध नहीं हो सकता (**तत्त्वकौमुदी**)। अन्तर्निहित वस्तु को प्रकाश में लाना ही विकास है। अरस्तू (Aristotle) ने इस विकास (Development) को सम्भाव्यसत्ता के रूप में माना है। इसी तरह जर्मन दार्शनिक जार्ज विल्हेल्म फ्रेडरिक् हेगल (George Withelm Friedrich Hegel) ने इसे गुप्तावस्था से प्रकट

रूप में लाना कहा है। इस मत को धर्मशास्त्र का भी समर्थन प्राप्त है (छान्दोग्योपनिषद्-6.2.2 तथा भगवद्गीता-2.16)। सत्कार्यवाद के उक्त सिद्धान्त के अनुसार कारण तथा कार्य उसी एक पदार्थ की अविकसित तथा विकसित अवस्थाएँ हैं। सारे उत्पादन उद्भाव अर्थात् विकास और समस्त विनाश या अनुद्भाव कारण के अभ्यन्तर विलीन है (सांख्यप्रवचन- सूत्र-1,120-21)। सत्कार्यवाद में अत्यन्ताऽभाव नामक कोई वस्तु है ही नहीं। अतीत और अनागत का प्रत्यक्ष दर्शन योगियों को ही होता है (सांख्य-प्रवचनभाष्य-1.121)। कार्य और कारण दोनों दो भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं। अतः ये दोनों चिन्तन की दो अवस्थाएँ है (कारणकार्यविभागात्—सांख्यकारिका-1.15)। ये कारण भी तीन प्रकार के माने गये हैं—समवायि कारण, असमवायि कारण और निमित्त कारण। इनमें सत्कार्यवाद का आधारभूत कारण समवाय सम्बन्ध को बताया गया है।

संक्षेप में 'सत्कार्यवाद' सांख्यदर्शन की एक प्रमुख मान्यता है। इस सत्कार्यवाद का ही दूसरा नाम प्रकृतिपरिणामवाद भी है। इसके अनुसार प्रकृति प्रलयावस्था में बीजरूप से अथवा अव्यक्त रूप से समस्त सृष्टि को आत्मलीन कर लेती है और सर्गावस्था में कार्यरूप में उन्हें व्यक्त करती है। कार्य कोई नई सृष्टि नहीं, वह तो कारण की कार्यरूप में मात्र अभिव्यक्ति है। सांख्य दर्शन ने सत्कार्यवाद की सिद्धि हेतु निम्नलिखित युक्तियाँ दी है यथा—

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाऽभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।। (सांख्यकारिका-9)

सत्कार्यवाद की यह परिभाषा सांख्यदर्शन की युक्तियों की रीढ़ है। प्रथम युक्ति है—असदकरणात्। न्याय-वैशेषिकों की मान्यता है कि कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व कारण में असत् था, उत्पन्न कार्य एक अभिनव सृष्टि है, जो पहले नहीं थी। इस मान्यता का खण्डन करते हुए सत्कार्यवादी सांख्यदर्शन का कहना है कि कार्य यदि उत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान न हो, तभी तो वह असत् होगा। अगर वह असत् है तो वह शश-विषाण अर्थात् खरहे के सींग तथा खपुष्प अर्थात् आकाश में खिले फूल की तरह होगा। अतः 'असत्' की उत्पत्ति कभी किसी तरह नहीं हो सकती; क्योंकि हजारों कारीगर एक साथ मिलकर भी आकाश में महल नहीं उठा सकते।

इनकी दूसरी युक्ति है—उपादानग्रहणात्। प्रत्येक कार्य अपने उपादान कारण (A material cause) या समवायि कारण (Inseparable cause) से सम्बद्ध (Connected with) रहता है। इसलिए उससे इसकी उत्पत्ति होती है। यदि कारणव्यापार के पूर्व कार्य की सत्ता न हो तो अविद्यमान कार्य का सम्बन्ध अपने उपादान कारण से किस प्रकार सम्भव होगा ? सम्बन्ध तो समरूप में ही होगा। असत् से सत् की अभिव्यक्ति कैसे सम्भव है ? उपादान या समवायि कारण के विना कार्य हो ही नहीं सकता। मिट्टी के विना घड़ा, धागे के विना कपड़ा या तिल के विना तेल की कल्पना कैसी ? इससे कार्य की उपादान कारण में विद्यमानता स्पष्टतः सिद्ध होती है।

इनकी तीसरी युक्ति है—**सर्वसम्भवाऽभावात्**। किसी भी कारण से किसी भी कार्य की उत्पत्ति सम्भव नहीं है। सभी कारणों से सभी कार्य उत्पन्न नहीं हो सकते। कार्य की उत्पत्तिपूर्व भी उपादान कारण में विद्यमानता सिद्ध होती है।

इनकी चौथी युक्ति है—**शक्तस्य शक्यकरणात्**। शक्य कार्य की उत्पत्ति शक्त कारण से ही सम्भव है। जिस कारण में जिस किसी भी कार्य को उत्पन्न करने की क्षमता या शक्ति होती है; उस कारण से वही कार्य उत्पन्न हो सकता है। जो कार्य बीजरूप में जिस कारण में अनभिव्यक्त है, वही कारण उसी कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति रखता है। यदि ऐसा नहीं होता तो पानी से दही, बैल से दूध, बालू से तेल प्राप्त होने लगता। इसे यह सिद्ध होता है कि शक्त कारण से ही शक्य कार्य की उत्पत्ति सम्भव है।

इनकी पाँचवीं युक्ति है—**कारणभावात्**। कारण और कार्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। किसी कार्य की अव्यक्तावस्था ही उसका कारण है। कोई भी कार्य अपने कारण का व्यक्त रूप है। कारण का जो स्वभाव है, वही कार्य का स्वभाव है। मिट्टी से बने घड़े का स्वभाव मिट्टी-जैसा ही होता है। कोई भी कार्य कारणात्मक होता है अर्थात् तात्त्विक रूप से कार्य कारण से अभिन्न होता है। दोनों का भेद तो मात्र व्यावहारिक है। अतः हम कह सकते हैं कि इन तर्कों के सहारे सत्कार्यवाद की सिद्धि होती है।